International Journal of Applied Research 2020; 6(6): 173-174

International Journal of Applied Research

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2020; 6(6): 173-174
www.allresearchjournal.com
Received: 16-04-2020
Accepted: 19-05-2020

सुधा कुमारी
सहायक शिक्षिका, (प.बा.उ.वि., आनंदपुर), शोधार्थी, हिन्दी–विभाग, ल.ना.मि. विश्वविद्यालय, दरभंगा, बिहार, भारत

Corresponding Author:
सुधा कुमारी
सहायक शिक्षिका, (प.बा.उ.वि., आनंदपुर), शोधार्थी, हिन्दी–विभाग, ल.ना.मि. विश्वविद्यालय, दरभंगा, बिहार, भारत

समकालीन हिन्दी कथा–साहित्य में परिसर–विमर्श

सुधा कुमारी

सारांश
समाजिक सरोकारों से लैस बुद्धिजीवियों और कार्यकर्ताओं के बीच लंबे समय से यह लगातार चर्चा और चिंता का विषय रहा है कि 'समकालीन हिन्दी कथा–साहित्य अनेक विमर्शों सहित 'परिसर–विमर्श' से भी संबंधित है, जिस प्रकार हिन्दी कथा–साहित्य, जिसे कथा, कहानी, आलोचना, कविता इत्यादि मानवीय संवेदनाओं की वाहक विधा के रूप में देखा जाता है वह दलित, स्त्री, अल्पसंख्यक तथा अन्य हाशिए के विमर्शों को किस रूप में चित्रित करता है? साहित्य अपने यर्थाथवादी होने के दावे के बावजूद इन मूल अवधारणाओं को रेखांकित कर उस पर आम जन के बीच किसी किस्म की संवेदना को विकसित कर पाने में सफल हो पाया है?

प्रस्तावना

समकालीन हिन्दी कथा–साहित्य के केन्द्र में 'विमर्श' हैं (1) इस तथ्य से कतई इनकार नहीं किया जा सकता है। वस्तुतः विमर्श का ही दूसरा नाम साहित्य हो चुका है। वैदिक साहित्य काल से लेकर संगणक (कम्प्यूटर) साहित्यिक काल तक का इतिहास गवाह है कि साहित्यकारों ने विमर्श–शक्ति–संचरण के साए में ही साहित्य का प्रणयन किया है। ऋग्वैदिक काल में पंचतत्त्व–विमर्श, पौराणिक काल में प्रकृति–पुरुष–विमर्श, ब्राह्मण काल में कृत्याकृत्य– विमर्श, लौकिक संस्कृत–काल में लोक–परलोक–विमर्श, कालिदास–काल में प्रेम–सौन्दर्य–विमर्श, वाल्मीकि–व्यास–काल में उचित–अनुचित, मर्यादा–लीला–विमर्श और राजे महाराजाओं के साहित्य–काल में यश–कीर्ति–वीरत्व–संस्तुति–विमर्श की तरह की समकालीन हिन्दी कथा–साहित्य में भी विविध स्थितियों पर विमर्शों के नये आयाम सामने आ रहे हैं। विमर्श भी ऐसा वैसा नहीं–आर–पार का विमर्श, आग्नेय विमर्श। इस विमर्श को दलित–विमर्श कहा जा रहा है। इस विमर्श की जंग–भूमि पर ऐसा ही लग रहा है, मानों, शुक्राचार्य और वृहस्पति एक बार फिर आमने–सामने खड़े हो गए हों। इस विमर्श के अंतराल में कलम का प्रयोग कुठार–प्रयोग को भी मात दे रहा है। इस तथ्य को स्वीकार करते हुए जामिया मिलिया इस्लामिया विश्वविद्यालय के हिन्दी प्रोफेसर (डॉ.) अब्दुल बिस्मिल्लाह ने लिखा है–'समकालीन हिन्दी कथा–साहित्य के (मूल में) केन्द्र में तमाम तरह के विमर्श हैं। दलित–विमर्श, स्त्री–विमर्श, आदिवासी–विमर्श और अब तो अल्पसंख्यक–विमर्श भी चल पड़ा है।' (2)

शिक्षा–विमर्श से संदर्भित प्रथम पुस्तक में जिस अंग्रेजी भाषा को सीखकर जीवन बनाने की प्रेरणा दी गयी है, कालान्तर में वही अंग्रेजी भाषा 'परिसर–विक्षोभ' का कारण भी साबित हो गयी। छात्र–असंतोष का कारण सबसे पहले अंग्रेजी ही बनी और जहाँ से यह कारण स्पष्ट हुआ, उससे संदर्भित 'परिसर–विमर्श' से संबंधित अधिकतर कथा–साहित्य का प्रणयन–प्रकाशन नहीं हुआ, जिसे स्पष्ट करते हुए डा. राय ने लिखा है–''आजादी के बाद शैक्षिक परिसर जीवन का एक ऐसा यथार्थ सामने आया, जो पहले न के बराबर था।'' (3) यद्यपि महात्मा गाँधी के सत्याग्रह आन्दोलन से ही परिसर जीवन में विक्षोभ की स्थितियाँ उत्पन्न हो गयी थीं, पर स्वाधीनता पूर्व हिन्दी उपन्यासों में उसका चित्रण बहुत कम हुआ है। आजादी प्राप्त होने के कुछ ही वर्ष पूर्व महात्मा गाँधी द्वारा चलाए गए ''भारत छोड़ो आन्दोलन'' में छात्रों की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही थी, जिसका बड़े पैमाने पर अंकन यशपाल ने लगभग तीन दशक बाद 'मेरी तेरी उसकी बात' (1974ई.) में किया।

परिसर–जीवन के इस सच को धर्मवीर भारती और राजेन्द्र यादव ने भी अपने–अपने तरीके से उभारने का सफल प्रयास किया है। यदि डॉ. देवराज अपने कई उपन्यासों में विश्वविद्यालय जीवन में प्रवेश कर रही विकृतियों का चित्रण किया है, तो यशपाल ने 'झूठा सच' में परिसर में आ रही विकृतियों के साथ छात्रों की सकारात्मक भूमिका का भी अंकन किया है। दुष्यन्त कुमार ने अपने 'छोटे–छोटे सवाल' (1964) में कॉलेजों में पनप रहे भ्रष्टाचार, अनियमितता, अनुशासनहीनता आदि का चित्रण किया है। (4)

श्रीलाल शुक्ल सहित कई उपन्यासकारों ने इसे उपन्यास का विषय बनाया, लेकिन तब भी परिसर का सच गहराई से सामने में नहीं आया।

विश्वविद्यालय परिसर का गंभीर सच 'अपना मोर्चा' में उभरा है, जिसे डॉ. काशीनाथ सिंह ने (2007 ई. में) प्रकाशित कराया, जिसमें यह स्पष्ट किया गया है कि छात्र–आन्दोलन से न तो सभी छात्र जुड़े रहते हैं और न ही शिक्षक या सभी शिक्षकेत्तर कर्मचारी ही। आम–आवाम भी सीधे नहीं जुड़ पाता है। अपना मोर्चा के प्रारंभ में ही नायक प्रोफेसर का दर्शन कला संकाय की तीसरी मंजिल पर एक कंगूरे के पास होता है। वह छात्र–आन्दोलन के कारण अस्त–व्यस्त हालात हो देख रहे हैं। आन्दोलन के कारण विश्वविद्यालय बंद है। विश्वविद्यालय का बूढ़ा चपरासी ठाकुर बंद कमरों की ओर देखते हुए कहता है– 'सब ठीक है। किसी को नहीं खोलना है। आखिर किसके लिए खोलना है।' (5)

निष्कर्षतः कह सकते है कि 'समकालीन हिन्दी कथा–साहित्य अनेक विमर्शों सहित 'परिसर–विमर्श' से भी संबंधित है, लेकिन स्त्री–विमर्श और दलित–विमर्श की तरह नहीं। आज न तो शिक्षक अपनी सही भूमिका का निर्वहन कर रहे हैं और न ही विद्यार्थी। सभी प्रकार की विकृतियों के मूल में संस्कारहीनता रेखांकित हो चुकी है।

मानवता–युक्त शिक्षा जब तक आत्मीयता का आलोक विकीर्ण नहीं करेगी, तब तक महज अर्थोपार्जक शिक्षा के कारण अनावश्यक विमर्श का भी जंजाल फैला रहेगा। अर्थकरी विद्या ही अनर्थकरी विद्या में तब्दील होती रहेगी और मानवता का पतन जारी रहेगा। हितोपदेश की मान्यता है–

"कोऽर्थः पुत्रेण जातेन, यो न विद्वान् न धार्मिकः।
कानेन चक्षुषा किंवा, चक्षु पीड़ैव केवल।।"

वर्त्तमान काल की शिक्षा न तो विद्वान बनाने में सक्षम प्रतीत हो रही है, और न ही धार्मिक बनाने में, जबकि मानव जीवन इन्हीं दो बिन्दुओं के अन्तराल में अमरता को प्राप्त कर सकता है। इसलिए कहा जा सकता है–

"अगर अमरता चाह रहे तब, बने आप विद्वान।
या बनकर धार्मिक हृदय से, करें जगत कल्याण।।"

संदर्भ

1. वमर्श–(विमर्ष)– मन में होनेवाले अहंभाव की स्फूर्ति। विचार या विवेचन/आलोचना–परीक्षा– जाँच एवं परामर्श।
2. स्तुतः विमर्श शब्द का संबंध आलोचना से है रचना से नहीं, तथापि विमर्श नाम का यह जीव रचना के भीतर कैसे घुस गया? यह 'आश्चर्य किन्तु सत्य' के अन्तर्गत आता है। –'वागर्थ'–अंक–277, जून–2014, पृ.–44।
3. 'हिन्दी उपन्यास का इतिहास–'गोपाल राय–राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृ.–442।
4. 'दुष्यन्त कुमार रचनावली–3– सम्पादक–विजय बहादुर सिंह–किताब घर प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृ.–15।
5. अपना मोर्चा– काशीनाथ सिंह–राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली–2012, पृ.–14।